१४६२५

ओ३म्

वेद में

रोगजन्तु शास्त्र

श्री० दा० सातवलेकर।

प्रकाशक

मंत्री—आर्य प्रतिनिधि सभा
पंजाब
लाहौर

सं० १९६९

प्रथम बार

[मूल्य -)॥

वेद में रोगजन्तु-शास्त्र ॥

एक समय ऐसा था कि जिस समय के लोक ऐसा समझते थे कि वेद का अर्थ समझना अशक्य है, वेद केवल कण्ठ करने के लिये ही है, केवल वेद मंत्रों के जप से ही सम्पूर्ण पापों की निवृत्ति होजाती है, इस लिये वेद का जप करना ही वैदिक धर्मियों का परम कर्तव्य है ॥

इसके पश्चात् दूसरा काल ऐसा प्राप्त हुआ कि जिस समय वेदार्थज्ञान की बड़ी आवश्यकता लोकों को प्रतीत हुई, अर्थ ज्ञान के सिवाय केवल कण्ठ करना उचित नहीं, ऐसा लोक समझने लगे इस द्वितीय काल में कण्ठ करने की अज्ञानावस्था से लोग थोड़े उन्नत होगये इसमें कोई सन्देह नहीं, परन्तु इस समय लोकों में ऐसी एक विपरीत बात उत्पन्न होगई कि लोकों का ध्यान वेदार्थ जानने के काम में लगना तो दूर रहा, परन्तु लोक वेद जानने वाले तथा न जानने वाले, कहने लगे कि वेद में सब कुछ है, जो विद्या आसानी से निकलती थी उसको वे लोक उद्धृत करने लगे इतना ही नहीं प्रत्युत जो विद्यायें वेद में स्पष्टतया नहीं प्रतीत होतीं थीं, उनको भी खेंच २ कर निकालने का प्रयत्न करने लगे, इस

खेंचातानी के प्रयत्न से लोकों में एक प्रतिक्रिया उत्पन्न हो गई, जिसका परिणाम यह हुवा कि वेदों का स्वाध्याय करने का उत्साह तरुण लोकों में से जाता रहा, यह तीसरा काल है, इस काल को औदासीन्य का काल समझना उचित है ॥

वेद में सब कुछ है यह कथन जैसा भ्रामक है, वैसा ही वेद केवल कंठ करने के पुस्तक हैं यह विश्वास भी निरर्थक है, जो बात स्पष्टतया वेद में प्रतीत होती है, उनका स्वीकार न करना बड़ा अनुचित है, जो बात वेद में है उसका हर एक ने स्वीकार करना चाहिये, तथा जो वात उनमें नहीं है, उस बात की खेंचा खेंची कर के आविष्कार करने का प्रयत्न करना भी बहुत बुरा है खेंचतानी का प्रयत्न ही लोकों का अविश्वास बढ़ाने के लिये सहायकारी होता है, इस लिये किसी वैदिकधर्मी मनुष्य को उचित नहीं कि वह वेद वाक्य को खेंचातानी करे, हर एक मनुष्य को उचित है कि वह निःपक्षपाती होकर जहां तक होसके वहां तक अपने भाव वेदों के ऊपर लगाने का प्रयत्न न करे, परन्तु वेदों के भावों को शिरसावन्द्यमान कर उन ही का प्रचारक बने इसी प्रकार की समबुद्धि रखते हुवे यह प्रस्तुत निबन्ध लिखने का प्रयत्न मैं कर रहा हूं ॥

प्रस्तुत निबन्ध के अन्दर वेद में रोगजंतु शास्त्र है अथवा नहीं, यदि है तो किस स्वरूप में है, इसका सारांश रूप से दिग्दर्शन करना है, सुज्ञ लोकों ने निम्न लिखित वचनों का विचार करके निश्चित करना चाहिये कि वेद में रोगजंतु-शास्त्र किस अवस्था में

है, इस शास्त्र का स्वरूप कथन करने में मुझे सुज्ञ विद्वान् लोक सहायता देंगे ऐसी आशा करके मैं इस निबन्ध का प्रारम्भ करता हूं ॥

आजकल प्रायः सब लोक यही समझते हैं, कि युरोपीय विद्वानों ने रोगजंतु-शास्त्र का संशोधन किया तथा उस शास्त्र को इस शताब्दी में बहुत विस्तृत करके पूर्ण किया, इसमें कोई सन्देह नहीं कि युरोप के विद्वानों ने इस रोगजंतु शास्त्र का शोध करके स्वतंत्र रीती से इस शास्त्र को पूर्ण बनाया, हमारा यहां कथन इतना ही है कि, इस शास्त्र की कई बातें वेद में पाई जाती हैं, वैदिक मंत्रों को देखने से पता लगता है कि, वैदिक काल में जंतु शास्त्र की कल्पना प्रचलित थी, देखिये :—

ये अन्नेषु विविध्यंति पात्रेषु पिबतो जनान् ॥ यजु० ॥

"खाने का अन्न तथा पीने का पानी इनके द्वारा जो शरीर में प्रविष्ट होकर विविध प्रकार कीं व्याधियां लोकों के (शरीर में) उत्पन्न करते हैं," इस प्रकार का वर्णन रोगजंतुओं के सम्बन्ध में उक्त वेद मंत्र में आया है, अन्न पानी के द्वारा कई क्रिमि अथवा सूक्ष्म रोगजंतु पेट में जाते हैं, और वे वहां नानाव्याधियां उत्पन्न करते हैं, यह भाव उक्त मंत्र में स्पष्ट है, आजकल के युरोपीय विद्वानों की यही सम्मति है, जैसे ये क्रिमि पेट में जाते हैं वैसे अन्य अवयवों में जाकर वहां रोग उत्पन्न करते हैं ऐसा निम्न मंत्र में लिखा है, देखिये :—

अन्वान्ध्यं शीर्षण्यमथो पार्ष्टेयं क्रिमीन् ।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जंभयामसि ॥
अथर्व, २ । ३१ । ४ ।

" अंतड़ियों में, मस्तक में, पसलियों में जाने वाले (अर्थात् वहां जाकर रोग उत्पन्न करने वाले) व्यध्वर तथा अवस्कव क्रिमि होते हैं, इनका हम नाश करते हैं" ॥

इस मंत्र में विस्पष्ट रूप से कहा है कि यह क्रिमि अन्ताड़ियां मस्तक, तथा पसलियां इनमें जाते हैं और वहां नाना व्याधियां उत्पन्न करते हैं, इन क्रिमियों की अनेक जातियां होंगीं तथा उस हर एक जाति का नाम अलग २ होगा, इस मंत्र में दो जातियों के क्रिमियों का उल्लेख है, एक अवस्कव तथा दूसरी व्यध्वर जाति यह नाम दो अलग २ क्रिमियों की जातियों के बोधक हैं, इन में " व्यध्वर " शब्द से बहुत ही बोध मिल सकता है, " व्यध्वर " शब्द का अर्थ देखिये :—

वि+अध्वर
वि=विरुद्ध } यज्ञ का विरोधी।
अध्वर=यज्ञ

" **यज्ञ का विरोधी** " ऐसा इस शब्द का अर्थ स्पष्ट है, यज्ञ जहां न होंगे उस स्थानपर उत्पन्न होकर दृष्टिगत होने वाले, अथवा यज्ञ से जिन का नाश होता है ऐसे क्रिमियों को "व्यध्वर" क्रिमी बोलते हैं, " व्यध्वर " शब्द का एक और अर्थ होता है देखिये :—

वि=विरुद्ध
अ=निषेध
ध्वरा=हिंसा

"**हिंसा के निषेध के विरुद्ध**" अर्थात् जहां हिंसा होती हो वहां रहने वाले तथा जहां अहिंसा है वहां नहीं होने वाले ऐसे जो क्रिमी होते हैं वे व्यध्वर क्रिमी हैं अर्थात यह हिंसा से अथवा मांस संपर्क से उत्पन्न होने वाले तथा निर्मांस प्रयोग से नाश होने वाले क्रिमी होते हैं, यह शब्द मांस भोजन का विरोधी तथा निर्मांस भोजन के अनुकूल है, मांस का प्रचार करने से इन क्रिमियों की बृद्धि होती है, और इन क्रिमियों के द्वारा विविध रोगों की बृद्धि होती हैं, इत्यादि आशय उक्त "व्यध्वर" शब्द से स्पष्टतया प्रतीत होता है ॥

इस प्रकार के अनेक मंत्र वेद में आये हैं, जिनको देखने से रोगजंतु-शास्त्र की वैदिक कल्पना स्पष्ट विदित हो सकती है, इन रोगजंतुओं की कई अन्य जातियों का उल्लेख निम्न मंत्र में आया है, देखिये :—

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरूमतृहम् ।
अलगण्डून्त्सर्वान् छलुनान् क्रिमीन्
वचसा जंभयामसि ॥ अथर्व २ । ३१ । २ ॥

"दृश्य तथा अदृश्य कुरूरू, अलगण्डू, तथा शलुन नामक क्रिमीयों का नाश हम करते हैं" ॥

इस मंत्र में (१) कुरूरू (२) अलगण्डू तथा (३) शलुन इन तीन क्रिमि जातियों का वर्णन है, तथा यह कहा है कि कई जातियों के क्रिमी नेत्र से दिखाई देते हैं तथा कई अन्य जातियों के

आंख से नहीं दीखते हैं, वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि नेत्र से दिखाई नहीं देते हैं, आज कल के युरोप के जन्तु शास्त्रज्ञों की भी यही सम्मति है, अस्तु, इस प्रकार के जो २ मंत्र वेद में आते हैं उनका विचार करने से निःसंशय विदित होता है कि वेद में रोग जन्तु शास्त्र की विद्या है, मैंने अब तक जो मंत्र उद्धृत किये हैं उन में पांच जातियों के क्रिमियों के नामों का उल्लेख है, (१) अवस्कव, (२) व्यध्वर, (३) कुरूरू, (४) अलगंडू (५) छलुन यह क्रिमियों के पांच जातियों के नाम हैं, क्रिमियों की छटी जाती का नाम "रुद्र" है, जिसका वर्णनः—

ये अन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ॥ यजु० ॥

इस पूर्वोद्धृत मंत्र में आचुका है, यही रुद्र संज्ञक जन्तु अन्न पानी के द्वारा शरीर में जाकर नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं, इन सूक्ष्म जन्तुओं को रुद्र नाम किस कारण दिया गया इसका विचार करना चाहिये :—

"रोदयन्तीति रुद्राः" ॥

जो रुलाते हैं उनको रुद्र कहते हैं, यह रुद्र संज्ञक रोगजन्तु जिस ऋतु में ग्राम में प्रवेश करते हैं और नानारोग उत्पन्न करते हैं उस समय लोग त्रस्त होकर रोने लगते हैं, प्लेग अतिसार, संनिपात इत्यादि महा व्याधियों के उत्पन्न होने से लोक कितने दुःखित होते है इसका विचार करने से विदित होगा कि इनका नाम रुद्र क्यों कर रखा गया है, यह रुद्र जीव कहां रहते हैं, इसका वर्णन आगामी मंत्र में दिया हुवा है:—

नमो रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां ये ऽन्तरिक्षे ये दिवि येषामन्नं वातो वर्षमिषवः ॥ यजु० ॥

"रुद्रों के लिये नमः। जो रुद्र पृथ्वी पर, अंतरिक्ष में तथा आकाश में रहते हैं, जिनका अन्न वायु है तथा वृष्टि जिनके शर है," अर्थात् यह रुद्र रूपी रोग जंतु सम्पूर्ण अंतरिक्ष में हैं और वे हवा भक्षण करके ही रहते हैं, वे इतने सूक्ष्म होने के कारण वे पानी के द्वारा पेट में जाकर नाना व्याधियां उत्पन्न कर सकते हैं, इनके निवास स्थान का वर्णन और भी देखिये :—

अस्मिन्महत्यर्णवे ऽन्तरिक्षे भवा अधि ॥
नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचरः ॥ ३ ॥
नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवं रुद्रा उपाश्रिताः ॥ ४ ॥
ये वृक्षेषु सस्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः ॥ ५ ॥
ये अन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ॥ ६ ॥ यजु०

"इस महान समुद्र में, अंतरिक्ष में तथा पृथ्वी के ऊपर नीलग्रीव तथा शितिकंठ शर्व (संज्ञकजंतु) रहते हैं, द्युलोक में रुद्र नाम के रहते हैं, ये वृक्षों में भी रहते हैं," तथा :—

सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्रा अधिभूम्याम् ॥ यजु० ॥ ॥ १ ॥

"ऐसे रुद्र इस पृथ्वी पर हजारों हैं," इनमें जिनका कंठ नील होता है उनको नीलकंठ कहते हैं, तथा जिनका कंठ श्वेत होता है उनको शितिकंठ कहते हैं, इस प्रकार सहस्रों जीव पृथ्वी पर तथा सहस्रों अंतरिक्ष में रहते हैं ॥

पूर्वोक्त नामों के अन्दर "शर्व" ऐसा एक इनका नाम आया है, जिसका अर्थ—शृणाति हिनास्ति इति शर्वः। जो हिंसा करता है उसको शर्व कहते हैं, प्राणिमात्र को जान से मारने वाले यह होते हैं, इस लिये इनको वेद में शर्व कहा है, पुराणों में रुद्र देवता संहार करने वाली मानी गई है, इसका भी हेतु यही है कि इन रुद्रों के कारण जो व्याधियां होती हैं उनके द्वारा प्राणिमात्र मर जाते हैं, इसी कारण इनको रुद्र, तथा शर्व कहा हैं इनके अनेक नाम वेद में आये हैं उन में से कई यहां देते हैं :—

(१) रुद्र—रुलाने वाले,

(२) शर्व—प्राणघात करने वाले,

(३) विक्षीणक—क्षीणता उत्पन्न करने वाले,

(४) भीम—भयंकर,

(५) प्रभव—बहुत उत्पन्न होने वाले,

(६) खेचर—आकाश में संचार करने वाले,

(७) गोचर—पृथ्वी पर रहने वाले,

(८) नक्तंचर—रात्री के समय संचार करने वाले,

(९) घोर—भयानक

(१०) यज्ञघ्न—यज्ञ से जिनकी मृत्यु होती है,

(११) व्यधर—यज्ञ के विरोधी,

(१२) काम नाशक—काम का नाश करने वाले,

(१३) बलघ्न—बलका नाश करने हारे,

(१४) महीचारी—पृथ्वी पर संचार करने हारे,

(१५) निशाचर—रात्री में संचरने हारे,

(१६) उन्माद—उन्माद वायु उत्पन्न करने हारे,

(१७) काल
(१८) निहन्ता
(१९) वध
(२०) निर्जीव

} प्राण हरण करने वाले,

इस प्रकार के कई अन्य शब्द हैं जो रुद्र के वाचक होते हुवे व्याधि तथा संहार के वाचक होते हैं, प्रायः ऐसा देखने में आया है कि जो राक्षस वाचक शब्द हैं वे सब शब्द रुद्र वाचक तथा रोग जन्तुओं के भी वाचक हैं, इस में आश्चर्य की बात यह है कि राक्षस वाचक निशाचर, असुर, नक्तंचर, रात्रिंचर, ये सब शब्द रुद्र के तथा रोग जन्तुओं के भी वाचक हैं, वैद्य औषधि द्वारा रोग जन्तुओं का नाश करता है इस कारण वैद्य का नाम "रक्षो-हा" (अर्थात राक्षस हंता) वेद में आया है, जिससे सुस्पष्ट रीति से विदित होगा कि राक्षस वाचक शब्द रोग जन्तुओं के भी वाचक हैं, देखिये :—

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहाऽमीवचातनः ॥

"जिस ब्राह्मण के समीप औषधियों का बड़ा संग्रह रहता है उस विप्र को भिषग् कहते हैं, तथा वह (रक्षोहा) राक्षसों का

हनन करने वाला तथा (अमीव चातनः) रोगों को दूर करने वाला होता है," ॥

इस मंत्र में "रक्षो-हा" यह शब्द है जिसका सूक्ष्म दृष्टी से विचार करने की बड़ी भारी आवश्यकता है, इस पद का अर्थ :—

रक्षः—राक्षस, असुर,

हा—हनन करने वाला,

"राक्षसों का नाश करने वाला" ऐसा स्पष्ट है, औषधियों का संग्रह करने वाला वैद्य राक्षसों का नाशक कैसा होता है। यह प्रश्न यहां उत्पन्न हो सकता है, पुराणों में वर्णित विशाल देहधारी क्रूर राक्षसों का यदि ग्रहण किया जाय तो उन राक्षसों का हनन वैद्य की औषधियों से होना अशक्य प्रतीत होता है यदि वैद्य किसी का हनन करता है, तो वह रोगबीजों का हनन करता है, और रोग बीज रोग जन्तु ही होते हैं, तथा रोग जन्तु ही सूक्ष्म राक्षस हैं, इन रोग जंतु रूपी राक्षसों का औषधि योजना द्वारा नाश करता है इस कारण वैद्यों को "रक्षो-हा" कहते हैं, यदि राक्षस शब्द का रोग जन्तु ऐसा अर्थ न होगा तो इस मंत्रमें इस शब्द का कोई अन्य सयुक्तिक अर्थ दृष्टि में नहीं आता है, वैद्य का इस मंत्र में दिया हुआ, "अमीव चातनः" (रोगहारक) यह नाम ठीक हैं, परन्तु "रक्षो-हा" (राक्षस हन्ता) इस नाम से कौनसा योग्य आशय निकलता है, ? अर्थात् "रक्षोहा" शब्द से यदि "रोग

जन्तु–हन्ता" ऐसा अर्थ लिया जाय तो ही "अमीव चातनः" शब्द का अर्थ खुलता है तथा रक्षो-हा शब्द का अर्थ भी पूर्वा पर शब्दों के अर्थों के साथ सुसंगत प्रतीत होता है ॥

राक्षस रात्री के समय प्रकट होते हैं ऐसा प्रायः सम्पूर्ण पुराणों में कहा है, इसका अर्थ रोग जंतु रात्री के समय प्रबल होते हैं ऐसा यदि लिया जाय तो वह अर्थ आधुनिक जंतु शास्त्र के अनुसार ठीक विदित होता है, इसी अर्थ के साधक "नक्तंचर" "निशाचर" "रात्रिंचर" इत्यादि शब्द हैं ॥

पुराणों में राक्षसों के शरीरों का वर्णन जहां २ आया है वहां २ उनके महान २ शरीर वर्णित हैं, परन्तु यहां जिनका वर्णन आया है उनके शरीर अतीव सूक्ष्म है, इस संदेह निवृत्ति के लिये कुछ विचार करने की आवश्यकता है निम्न लिखित शतपथ ब्राह्मण का वचन देखने से राक्षसों के शरीर के आकार का निश्चय हो सकेगा, देखिये :—

अथ कृष्णाजिनमादत्ते । शर्मासीति । चर्म वा एतत्कृष्णस्य तन्मानुषं शर्म देवत्रा तस्मादाह शर्मासीति । तदवधूनोति । अवधूतं रक्षः । अवधूता अरातयः । इति । तन्नाष्ट्रा एवैतद्रक्षांस्यतोऽपहन्त्यपतिनत्येव पात्राण्यवधुनोति यद्ध्यस्यामेध्यमभूत्तद्ध्यस्यै तदवधुनोति ॥ ४ ॥ शतपथ० १ । ४ । ४ ॥

"(अध्वर्यु) कृष्णाजिन उठाता (हुवा मुंह से कहता है कि) तूं कल्याणकारी हो, चर्म मनुष्यों के पास तथा शर्म देवों के

पास रहता है, इस लिये तं शर्म है ऐसा चर्म को कहा है पश्चात् वह कृष्णाजिन झड़कता है (और मुंह से कहता है कि) राक्षस झिड़काये गये, शत्रू झिड़काये गये, झिड़काने के समय वह अध्वर्यू चर्म यज्ञ पात्रों से दूर हटकता है (इसका कारण यह है कि झड़काने के समय चर्म से अशुद्धि निकल कर यज्ञ पात्रों में न गिरे) ऐसे झिड़कने से सब अशुद्धि निकल जाती है ॥

कई पण्डित इस स्थान पर यह समझते हैं कि, चर्म झडकने के समय अध्वर्यूनें उठकर दूसरी ओर जाना चाहिये, परन्तु दूसरे कई ऐसा समझते हैं कि, अध्वर्यूनें दूसरे स्थान पर जाकर चर्म झडकने की आवश्यकता नहीं, प्रत्युत उन्हों ने चर्म को ऐसा पकड़ना चाहिये कि झड़कानें में जो अशुद्धि गिरेगी वह यज्ञ पात्रों में न गिरने पावे, तात्पर्य चर्म की अशुद्धि किसी अवस्था में यज्ञ पात्रों में नहीं गिरनी चाहिये, अस्तु-पूर्वोक्त ब्राह्मण ग्रंथ का वचन देखने से निम्न लिखित बातों का विचार मन में आता है:—

(१) अध्वर्यू यज्ञ के समय बैठने का कृष्णाजिन झिडकता है।

(२) चर्म झडकाने के समय अध्वर्यू के मन में यह भाव रहता कि, इस झडकाने से चर्म में से सब राक्षस गिर जावे।

(३) तथा उनका अन्य भाव यह रहता है कि जो (रक्षः) राक्षस होते हैं वे ही (अराति) शत्रु होते हैं ॥

(४) वह चर्म झडकाने के समय यज्ञ पात्रों के ऊपर धर कर नहीं झडकाता है प्रत्युत यज्ञ पात्रों से दूर पकड़ कर झडकाता है,

क्योंकि यज्ञ पात्रों के ऊपर झड़काने से चर्म में से सब राक्षस यज्ञ पात्रों के अन्दर गिरेंगे, और उनके गिरने से यज्ञ पात्र तथा हवि अमेध्य-अपवित्र होजायगा, ऐसा वह अध्वर्यू मानता है ॥

(५) इसलिये अध्वर्यू उठकर दूसरी ओर जाता है अथवा वहां ही बैठकर दूसरी ओर पकड़ कर चर्म झड़कता है ॥

यह पांच बातों का विचार करने से उनका आकार कितना बड़ा अथवा छोटा होता है, इसका निश्चय हो सकता है, सब पुराणों में ऐकमत्य से लिखा है कि राक्षस देवों के, यज्ञों के तथा धार्मिकों के शत्रु होते हैं, यह इनकी शत्रुता सुस्पष्ट होने के कारण सब जानते हैं अतएव यहां उसके सम्बन्ध में कुछ विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं, यहां इतना ही देखना है कि उक्त पांच बातों का विचार करने से क्या क्या अनुमान निकल आते हैं:—

(१) राक्षसों की कई ऐसी जातियां हैं कि, उन जातियों के राक्षस इतने सूक्ष्म होते हैं कि, वे कृष्णा जिन के पृष्ठभाग पर चिपक जाते हैं ॥

(२) वह राक्षस धूली के रजःकण से भी सूक्ष्म होते हैं, वह हाथों से पकड़े नहीं जाते, उनको अलग करना हो तो चर्म झटकाना पड़ता है, अर्थात् वह धूली के रजःकण से भी सूक्ष्म होते हैं ॥

(३) यह राक्षस बड़े भारी अपवित्र होते हैं, इनके गिरने से यज्ञ पात्र तथा हवि सम्पूर्ण अपवित्र बनता है ॥

इन तीन अनुमानों का इकट्ठा विचार करने से प्रतीत होने लगता है कि, यह राक्षस अत्यन्त सूक्ष्म होने चाहियें, वह चर्म पृष्ठ

पर चिपक जाने के योग्य सूक्ष्म, तथा यज्ञ पात्रों को बिगाड़ने योग्य अपवित्र अथवा विषरूप होते हैं, अर्थात् यह राक्षसों का वर्णन, वह विषमय सूक्ष्म रोगजंतु हैं ऐसा स्पष्ट दर्शा रहा है, इतना विचार निश्चित होने के पश्चात् शतपथ का एक वचन देखना चाहिये :—

मनोर्ह वा ऋषभ आस। तस्मिन्नसुरघ्नी सपत्नघ्नी वाक् प्रविष्टास। तस्य हस्मश्वसथा द्रवथादसुर रक्षसानि मृद्यमानानि यन्ति। ते हासुराः समूदिरे। पापं बत नोऽयमृषभः सचते। कथं न्विमं दभ्नुयामेति। किलाताकुलीति हासुरब्रह्मा वासतुः ॥ १४ ॥ तौ होचतुः। श्रद्धादेवो वै मनुराबं नु वेदावेति। तौहागत्योचतु र्मनो याजयावत्वेति। केनेति। अनेनर्षभेणेति। तथेति। तस्या-लब्धस्य सावागपचक्राम ॥ १५ ॥ सा मनोरेव जायां मानवीं प्रविवेश। तस्यैहस्म यत्र वदंत्यैश्रृणवन्ति ततो हस्मैवासुररक्ष-सानि मृद्यमानानि यन्ति। ते हासुराः समूदिरे। इतो वै नः पापीयः सचते। भूयो हि मानुषी वाग् वदतीति। किलाताकुली हैं वोचतुः। श्रद्धादेवो वै मनुरावंन्वेव वेदावेति। तौ हागत्यो चतुर्मनो याजयावत्वेति। केनेत्य नैयेव जायवेति। तथेति। तस्या आलब्धायै सा वागपचक्राम ॥ १६ ॥ सा यज्ञमेव यज्ञ पात्राणि प्रविवेश। ततो हैनां न शेकतुर्निर्हन्तुम्। सैषाऽसुरघ्नी वागुद्वदति। स यस्य ह एवं विदुष एतामत्र वाचं प्रत्युद्वादयन्ति पापीयांसो हैवास्य सपत्ना भवन्ति ॥ १७ ॥

शतपथ ब्रा० १। ४ ॥

अर्थ—मनु के पास एक ऋषभ था, जिस में राक्षस तथा शत्रुओं की संहारक वाणी प्रविष्ट हो गई थी, इस कारण उस ऋषभ के श्वास तथा शब्द से राक्षस मारे जाते थे, यह देखकर राक्षस आपस में सोचने लगे कि 'यह ऋषभ हमारा नाश करता है, अतः इसका नाश हम कैसा करें, किरात तथा अकुली नामक राक्षसों के दो पुरोहित थे, वे कहने लगे कि 'मनु श्रद्धादेव है, चलो उनही के पास जाकर निश्चय करेंगे,' वह उनके पास गये और कहने लगे कि 'हे मनो! हम तुम्हारे लिये यज्ञ करेंगे,' मनु ने पूछा कि 'किस से तुम यज्ञ करो गे' वे कहने लगे कि 'इस ऋषभ से" यह सुन कर "ठीक है" ऐसा मनू ने कहा, नंतर राक्षसों ने ऋषभ का हवन करके यज्ञ किया, उसी समय राक्षस विध्वंसक शब्द उस में से निकल कर मनू के मानवी नामक स्त्री में प्रविष्ट होगया, जिस समय इनका शब्द राक्षसों को सुनाई देता था उसी समय राक्षस मर जाते थे, वह देख कर वे कहने लगे कि "पहले से बड़ा संकट यह हमारे पर आगया है, क्योंकि मनुष्य का शब्द अधिक शब्द बोलता है, (इस कारण हमारा नाश अधिक होने लगा है,) नंतर कलात व आकुली कहने लगे कि "मनु श्रद्धा देव है, चलो उन्ही को मिल कर निश्चय करेंगे, वे उनके पास गये, और कहने लगे कि "हे मनो! हम तुम्हारे लिये यज्ञ करेंगे" "किस से" ऐसा मनु ने पूछा, इस पर उन्हों ने कहा कि, "इस तुम्हारी पत्नी से" मनु ने कहा कि ठीक है, पश्चात् उस मनवी का वध राक्षसों ने किया, इस समय राक्षस

विनाशक शब्द उनके शरीर से निकला और यज्ञ तथा यज्ञ पात्रों में घुस गया, इस के पश्चात राक्षस कुछ भी न कर सके" ॥

इस शत पथ ब्राह्मण के वचन से एक बात निश्चित होती है वह यह है कि यज्ञों के सामने राक्षसों का बल नहीं चलता है, यज्ञ पद्धति प्रारम्भ होने तक राक्षस विध्वंसन के जो २ प्रकार थे उनके ऊपर राक्षस कुछ न कुछ उपाय कर सकते थे, परन्तु जब से यज्ञ प्रयोग प्रारम्भ होगया उस समय से राक्षसों का बल नष्ट होगया ॥

उक्त शत पथ के वचन से प्रतीत होता है कि, राक्षस विध्वंसन के तीन प्रयोग विद्यमान थे (१) एक ऋषभ प्रयोग, (२) दूसरा जाया प्रयोग (३) तीसरा यज्ञ–प्रयोग, इन तीनों प्रयोगों में से यज्ञ प्रयोग सब से उत्तम निश्चित होगया यह उक्त वचन का आशय है, यह प्रयोग क्या है तथा इनके कथन से क्या तात्पर्य लेना चाहिये, इसका विचार अब करेंगे ॥

इन तीन प्रयोगों में प्रथम ऋषभ प्रयोग है, ऋषभ किंवा वृषभ प्रयोग है, ऋषभ किंवा वृषभ यह शब्द व्यवहार में बैल के वाचक है, यहां राक्षसों के साथ वैद्य का सम्बन्ध पूर्व मंत्र में आया हुआ है इस कारण ऋषभ शब्द से भी वैद्यशास्त्रीय अर्थ ही लेना उचित है, क्योंकि ऋषभ राक्षसों का नाश करने वाली चीज है, अर्थात ऋषभ संज्ञक वनस्पति के सहाय से प्रथमतः मनुष्य राक्षसों–अर्थात रोग जन्तुओं का नाश करते थे, परन्तु पश्चात उनको अनुभव

प्राप्त हुआ कि औषधि प्रयोग से रोग बीजों का नाश उत्तमता से नहीं होता है, इस समय दूसरी युक्ति के विचार में लोक लगे उनको दूसरी युक्ति प्राप्त होगई, वही जाया प्रयोग है, मनु की जाया मानवी-बुद्धि अथवा मनः शक्ती के प्रभाव से रोग निवृत्ति सम्भव है ऐसा मेस्मेरिझम के प्रयोगों से सिद्ध हैं, औषधि व मानस प्रक्रिया इन दोनों उपायों से व्यक्ति गत रोगों की निवृत्ति शक्य है, परन्तु समुदायिक रोगों को दूर करने के लिये उक्त दो प्रकार संपूर्णतया असमर्थ है, जो औषधि का सेवन करता है उनको आरोग्य होसकता है, अथवा जिनके ऊपर मानस प्रयोग किया जाय उनका रोग दूर हो सकता है, परन्तु उनके पड़ोसी को इन उपायों से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता है, इस अवस्था को देख कर मनुष्य खिन्न होगये और परमेश्वर चिंतन करने लगे, उस समय परमेश्वर ने यज्ञ प्रयोग दिया, औषधि चिकित्सा तथा मानस चिकित्सा इन दोनों से व्यक्ति गत रोग निवृत्ति होती है, परन्तु ग्रामों में व्यापक बिमारियां फल गई, सैंकड़ों लोक अस्वस्थ होने लगे, तब इन व्यक्ति गत उपायों से क्या होना है ? ऐसे ग्रामिक आपत्ति में सार्वत्रिक वायु शुद्धि की अत्यन्त आवश्यकता है, यह कार्य यज्ञ प्रयोग से उत्तम प्रकार होता है, औषधि चिकित्सा में मुख्य दोष यह है कि, औषधि सेवन से उस व्यक्ति के शरीर के रोग जन्तु नाश होने पर भी उसके गृह में तथा उस ग्राम में रोग जन्तु रहते ही हैं, परन्तु यज्ञ के द्वारा वायु शुद्धि करके रोग जन्तुओं का नाश किया जाय तो जैसा एक व्यक्ति का तथा सम्पूर्ण ग्राम का लाभ हो सकता है

यज्ञ करने वाले तथा न करने वाले इन दोनों प्रकार के मनुष्यों का लाभ होसकता है, इस लाभदायकता को देखने से पता लगेगा कि यज्ञ प्रयोग की श्रेष्ठता अन्य दो प्रयोगों पर किस बात में है, इन बातों को ध्यान में रख कर पूर्वोक्त शतपथीय आख्यायिका देखी जाय तो उसका निम्न लिखित आशय प्रकट होगा :—

"मनु अर्थात् विद्वान् मनुष्य, उनके पास ऋषभादि वनस्पतियां थीं, इनके द्वारा यह रोगों का उपशम करता था, पश्चात् रोग जन्तुओं ने औषधियों को जीत लिया, उस समय मनुष्यों ने मानवी–मनन शक्ति–के द्वारा रोगों का उपशम करना प्रारम्भ किया, रोग जन्तुओं ने इस शक्ति को भी जीत लिया, पश्चात् मनुष्यों ने यज्ञ प्रारम्भ किये. जिस समय यज्ञ प्रारम्भ हो गये उस समय से रोग जन्तु रूपी राक्षस हतवीर्य होकर पराभूत होगये ॥

उक्त शतपथीय आख्यायिका के अन्दर "असुर तथा राक्षस" यह दो शब्द आये हैं. पूर्वापर संबंध देखने से वे दोनों शब्द रोग जन्तुओं के वाचक प्रतीत होते हैं, "असुरः" शब्द का मूल अर्थ "असु+ल" (प्राण+हरण करने वाला) होगा, संस्कृत में "र" तथा "ल" का अभेद माना जाता है इस नियमानुसार मूल "असुल" शब्द का रूपांतर "असुर" होगया होगा, अथवा "असुर" शब्द के देव तथा राक्षस ऐसे दो परस्पर विरोधी अर्थ है, देव वाचक "असु+ र" शब्द का "प्राणदाता" ऐसा अर्थ है, इसके विरुद्ध राक्षस वाचक "अ+सुर" शब्द का अर्थ "प्राणहर्ता" होना चाहिये, तात्पर्य किसी प्रकार देखने से असुर

शब्द प्राण हारक अर्थ बताता है, अत एव उस से रोग जन्तुओं का बोध हो सकता है ॥

अस्तु, उक्त प्रमाणों से विचारी पुरुषों के मन में आ जाएगा कि वैदिक वाङ्मयमें रोग जन्तुओं की कल्पना है इन रोग जंतुओं के नाम पूर्व स्थल में लिखे गये हैं, अब उनके स्वरूप का थोड़ा सा विचार करते हैं, "शिति+कंठ" तथा "नील+कंठ" इन दो शब्दों से उनके कंठ का स्वरूप प्रतीत होता है, जिनका कंठ श्वेत होता है उनको शिति+कंठ कहते हैं तथा जिनका कंठ नीला होता है उनको नीलकंठ कहते हैं, और देखीये :—

असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः,
सुमंगलः ॥
ये चे मां रुद्रा अभितो दिक्षुश्रिताः,
सहस्रशो वैषां हेड ईमहे ॥
नमो महद्भयः क्षुल्लकेभ्यश्च वो नमः ॥

इन मंत्रों में (१) ताम्र, (२) अरुण, (नारंगी) (३) बभ्रुः--भूरा, (४) महान्--बड़ा, (५) क्षुल्लक--छोटा सूक्ष्म, यह शब्द आये हैं, इन शब्दों से रोग जंतुओं के स्वरूप की कल्पना हो सकती है, "क्षुल्लक" शब्द से उनका आकार अति सूक्ष्म होता है, ऐसा प्रतीत होता है ॥

नमो विक्षीणकेभ्यः ।

इस मंत्र में "विक्षीणक" शब्द आया है, जिसका अर्थ "विशेषक्षीणता उत्पन्न करने हारा" ऐसा है, यह रुद्र स्वरूपी रोग

जन्तु अत्यंत क्षीणता उत्पन्न करते हैं इस लिये इनको "विक्षीणक कहते हैं, वेद में इनको "यमदूत" भी कहा है :—

वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतो,
ऽपसेधामि सर्वान् ॥ ११ ॥
आरादरातिं निर्ऋतिं परोग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ॥
रक्षो यत्सर्वं दुर्भूतं तत्तम इवाप हन्मि ॥ १२ ॥
अथर्व० ८ । २ । १२ ॥

वैवस्वतने भेजे हुए संपूर्ण यमदूतों का मैं नाश करता हुं," राक्षस, पिशाच, मांसाशी, ग्राही (पुराणा रोग) निर्ऋति, दुष्ट इनका मैं नाश करता हुं ॥

इन मंत्रों में जो राक्षस, पिशाच, क्रव्याद, ग्राही, निर्ऋति, वगैरा यमदूतों के नाम आये हैं, वे सब के सब नाम रोगोत्पादक जंतुओं के हैं, यदि ऐसा न माना जावे तो अगले मंत्र का अर्थ लगाना मुशकिल होगा, देखिये :—

वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् ।
रक्षः पिशाचानप बाधमानः ॥
अथर्व० १२ । ३ । १५ ।

" दिव्य गुणों के साथ वनस्पति आई, जो राक्षस तथा पिशाच इनका नाश करती है ॥

इस मंत्र के अन्दर कहा है कि राक्षस तथा पिशाच इत्यादि यों का नाश करने वाली वनस्पति रहती है, बनस्पति के द्वारा

राक्षसों का नाश होना किस प्रकार संभव है ? पुराणों में वर्णित महान देहधारी राक्षसों का नाश बनस्पति द्वारा कैसा हो सकता है ? यदि विशाल देहधारी राक्षसों का नाश बनस्पति द्वारा होना संभव होता तो पुराणों में वर्णित महान् २ युद्ध किस लिये किये जाते, कोई कहेंगे कि, विष युक्त बनस्पति से राक्षसों का नाश संभव है, इस पर उत्तर ऐसा है कि विष से संपूर्ण प्राणिमात्र का नाश होना संभव है फिर उक्त मंत्र में राक्षस तथा पिशाच इनका ही उल्लेख करने का प्रयोजन क्या है ? इसलिये यह मानना पड़ता है कि, बनस्पति द्वारा नाश को प्राप्त होने वाले राक्षस यही रोग जंतु समझने चाहिये, क्योंकि औषधि द्वारा इन्हीं का नाश संभवनीय है, संपूर्ण वैद्य ग्रंथों में कहा है कि औषधियों के द्वारा रोग बीजों का नाश होता है, यह सम्बन्ध ध्यान में लाने से प्रतीत होता है कि राक्षस, पिशाच वगैरा शब्द रोगजंतुओं के ही वाचक हैं ॥

यम दूत शब्द के विषय में एक पौराणिक कल्पना देखनी चाहिये, वैष्णव पुराणों में कहा गया है, कि "यमदूतों का पराजय विष्णुदूत सदैव करते हैं, इसलिये विष्णु के उपासक यमदूतों के भय से दूर रहते हैं," इस कथा का स्पष्टीकरण करने के लिये शब्दों के अर्थ देखने चाहिये :—

यमदूत=रोगजंतु,

विष्णु=सूर्य,

विष्णुदूत=सूर्य प्रकाश, सूर्य किरण,

यम दूत विष्णु दूतों के सामने नहीं ठहर सकते हैं इसका

अर्थ इतना ही है कि सूर्य प्रकाश में रोगजंतु नहीं रह सकते, अतः विपुल सूर्य प्रकाश के स्थान पर जो रहते हैं उनको यमदूतों अर्थात रोगजंतुओं का भय नहीं हो सकता है, इसी मुख्य सिद्धान्त पर पौराणिक गाथायें रचीं गई हैं, ऐसा विदित होता है, अस्तुः अब इन बातों को ध्यान में रखकर पूर्वोक्त शब्दों के अर्थ देखिये :—

ग्राही—पकड़ कर रखने वाला रोग, अर्थात् बहुत दिन न अच्छा होने वाली बीमारी ॥

क्रव्याद—मांस की क्षीणता करने वाले रोग।

पिशाच—रक्त का नाश करने वाले रोग।

यही नाम इन रोगों को उत्पन्न करने वाले रोग जंतुओं के होते हैं, इसी प्रकार अन्य शब्दों के विषय में जानना चाहिये, अब बनस्पति के द्वारा राक्षसों का नाश होता है इस विषय में अन्य प्रमाण देखिये :-

अज शृंग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय।

अथर्व० ४। ३७। २।

" अजशृंगी नामक बनस्पति के सुवास से सब राक्षस नाश को प्राप्त होते हैं" ॥

बनस्पति के सुवास से विनष्ट होने वाले राक्षस पुराण वर्णित विशाल राक्षस निश्चय से न होंगे, वनस्पति के गंध से रोगजंतु अथवा ऐसे ही सूक्ष्म कीट नष्ट हो सकते हैं, इसका विचार करने से

पूर्वोक्त मंत्र में "रक्षः" पद से रोग जंतुओं का ही ग्रहण होना उचित है ऐसा प्रतीत होगा, इन रोग जंतुओं का नाश एक प्रकार के बनस्पति के गंध से होता है, इस प्रकार की क्रिमिघ्न बनस्पतियां अनेक होगीं, उन सब का उल्लेख यहां करने की आवश्यकता नहीं, अब अन्य पदार्थों का विचार करेंगे:—

यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे ।
शंखेन हत्वा रक्षांसि अत्रिणो विषहामहे ॥
अथर्व० ४ । १० । ६ ।

इस मंत्र में कहा है कि "शंख के द्वारा राक्षसों का नाश होता है," शंख अत्यंत औषधि है, शंख भस्म से कई व्याधियां अच्छी होती हैं, पानी में घोलकर शंख का द्रव लेते हैं, अर्थात यह शंख अत्यन्त रोगजंतु नाशक है, जो जो पदार्थ रोग दूर करने वाले होते हैं, वह सब प्रायः रोग जंतुओं के, अर्थात राक्षसों के, विनाशक होते हैं, जैसी बनस्पतियां तथा शंखादि पदार्थ राक्षस नाशक है उसी प्रकार "अग्नि" भी रोगजंतु नाशक है, देखियेः—

उपप्रागाद्देवोऽग्नी रक्षोहाऽमीवचातनः ।
दहन्नपद्वयाविनो यातुधानान् किमीदिनः ॥
अथर्व० १ । २८ । १ ॥

"यातुधान, किमीदिन तथा राक्षस इनका नाश करने वाला तथा रोगों को दूर करने वाला अग्निदेव आता है," इस मंत्र में अग्नि के लिये जैसा "अमीव-चातन" (रोगों का नाशक)

कहा है उसी प्रकार "रक्षो+हा" राक्षस विध्वंसक भी कहा है, यातुधान, किमीदिन, राक्षस ये सब नाम रोगजंतुओं के ही हैं, इन का नाश करने वाला होने से ही अग्नि रक्षो+हा कहा जाता है, तथा अग्नि रक्षोहा होने से ही अमीव+चातन (रोग नाशक) होता है, राक्षसों का नाश तथा रोगों का दूर होना इनका परस्पर संबंध नित्य है, जैसा पूर्व मंत्र में वैद्य के लिये रक्षोहा वं अमीव+चातनः कहा है वैसा ही अग्नि के लिये भी कहा है, इस प्रकार सब मंत्र विचार पूर्वक देखने से पता लगता है कि राक्षसों का विध्वंसन करने वाली चीजें अवश्यमेव रोगनाशक होती हैं, राक्षस ही रोग जंतु होने से राक्षस बहुत बढ़ने से व्याधियां बढ़ती हैं तथा उनके नाश होने से व्याधियां भी नष्ट होती हैं. राक्षसों के बढ़ने घटने से व्याधियों का बढ़ना घटना होता है, अतएव राक्षसविध्वंसक पदार्थ आरोग्यता देने वाले समझे गये हैं, अग्नि भी इसी प्रकार आरोग्य देने वाला पूर्वोक्त मंत्र में कहा है, अग्नि जलने से उसके साथ हवा जलती है, उस समय वायु के अन्दर रहने वाले राक्षस, रोगजंतु, जलजाते हैं, अग्नि से तपा हुआ वायु उस समय लघु होने से ऊपर जाता है और दूसरा वायु उस स्थान पर आता है, और उसके राक्षस जलजाते हैं, इस प्रकार होने से अग्नि जलते हुए स्थान का वायु शुद्ध होता है, गृह की तथा ग्राम की हवा इसी प्रकार शुद्ध की जाती है, इसी प्रकार आजकल म्युनिसीपालिटी के लोक भी हवा शुद्ध करते हैं, जिस गृह में प्लेगादि रोग होते हैं उस मकान में तथा उसके चारों ओर अग्नि जलाया जाता है, उस अग्नि में

गंधक तथा अन्य द्रव्य जलाते हैं, भूमी खोद कर उस पर घांस रख कर जलाते हैं, इत्यादि प्रकार प्लेगाक्रमित ग्रामों में सरकार करती, है, इस बीसवी शताब्दी में डाक्टर लोग भी अग्नी को रोग जन्तु विध्वंसक मानते हैं, वही आशय "रक्षो+हा" तथा "अमीव+चातन" इन दो पदों से वेद मंत्र में कहा है, रोगदूरीकरण में अग्नी का क्या कार्य है यह इन पदों में उत्तम रीति से वर्णित है, अग्नी के द्वारा रोग जन्तुओं का नाश होता है और व्याधियां दूर हो सकती है यह बात मन में ठीक प्रकार आगई, तो यज्ञ का महत्व विदित होने के लिये बहुत देर नहीं लगे गी, देखिये यज्ञ में क्या किया जाता है ! (१) विशिष्ट प्रकार के समिधाओं से अग्नि प्रदीप्त किया जाता है, (२) गाय का उत्तम घी आहुतियों के द्वारा जलाया जाता है, (४) सुगंधित, रोग नाशक, स्निग्ध, तथा मिष्ट ऐसी चतुर्विध हवन सामग्री अग्नि में जलाई जाती है, (४) मन में पवित्र भाव रखा जाता है, (५) परमेश्वर स्तुति रूप वेद मंत्रों का उच्चारण किया जाता है, यज्ञ में यह पांच प्रकार किये जाते हैं, इस में कोई प्रकार बुरा नहीं, अग्नी के जलाने से वायु शुद्धि होती हैं ऐसा यदि आज कल माना जाता है तो विशिष्ट प्रकार के लकड़ियों से किया हुआ तथा जिस में विविध औषधियों का हवन किया जाता है, ऐसा अग्नि अनिष्ट कार्य कर्ता होगा ऐसा कौन कहेगा ? यज्ञ में विशिष्ट रोग निवृत्ति के लिये किस औषधी का हवन करना चाहिये, हम जिन पदार्थों का हवन करते हैं यह सब ठीक है अथवा इस में कुच्छ सुधारणा के लिये स्थान है यह प्रश्न

स्वतन्त्र है, यहां हमारा कथन इतना ही है कि, यदि कोई लकड़ी जला कर प्रदीप्त किया हुआ अग्नि वायु शुद्धि करता है तो विशिष्ट लकड़ियों तथा औषधियों से जलाया हुआ अग्नि उत्तम गुणकारी होना संभव है, किस औषधि का कैसा उपयोग करना यह प्रश्न स्वतन्त्र है, इसका विचार वैद्य शास्त्रज्ञ तथा आरोग्य शास्त्रज्ञों ने करना उचित है, यहां इतना ही बतलाना है कि यज्ञ का तत्व अति उत्तम है और यह यज्ञ अग्नि के रोग नाशक गुण के बुनियाद पर रचा गया है ॥

कई कहते हैं कि यज्ञ करना यह एक प्रकार की पोपलीला है, परन्तु यह कहने वालों का अज्ञान है, वास्तव में देखा जाय तो ऐसा प्रतीत होगा कि अग्नि का वायु शुद्धि कारक गुण अनुभव में आने के पश्चात ही यज्ञ सर्वमान्य हुआ होगा, अर्थात यज्ञ करना यह पोपलीला नहीं प्रत्युत यह एक अत्यन्त उपयुक्त कर्म है, अस्तु इतने विचार से यह प्रतीत हो सकता है कि अग्नि यह "रक्षसहन्ता" अर्थात् रोग जन्तु नाशक अत एव आरोग्य संवर्धक हैं अब और एक मंत्र देखिये :—

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्व मराय्यः ॥
दुर्णाम्नीः सर्वादुर्वाचास्ता अस्मन्नाशयामसि ॥

अथर्व० । ४ । १७ । ५ ॥

(१) दुष्ट स्वप्न, (२) दुर्जीवित्व, (३) राक्षस रोग जन्तु, (४) अराथि—अशुद्धि, (५) वाचा तथा शब्द इनके दोष इन सब का हम नाश करते हैं" ॥

इस मंत्र में विविध प्रकार के व्याधियों के उल्लेख हैं, दुष्ट स्वप्न आने यह मन की व्याधि, जीवित दुःख मय प्रतीत होना यह शारीरिक व्याधि वाणी के रोग इत्यादियों का मूल कारण "रक्षः" अर्थात रोग जंतु तथा "अराय्यः" अर्थात् अशुद्धि है, इन का नाश होने से इनके कार्यभूत व्याधियों का नाश होता है, इस मंत्र में आया हुआ अरायि शब्द का अर्थ अत्यन्त महत्व का है, "अ+रायि" शब्द का अर्थ अशुद्धि, "अदातृत्व" ऐसा है, अरायिका रक्षः पद के साथ यहां संबंध है, इससे प्रतीत होता है कि अशुद्धि में राक्षसों का उद्भव होना है, शुद्धि में उनकी स्थिति नहीं हो सकती है, अग्नि शुद्धि, उत्पन्न करने वाला होने से राक्षसों का विध्वंसक होता है, इसी उद्देश से हवन द्वारा रोग दूर होते हैं, ऐसा कहा है, देखिये :—

मुंचामित्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ॥
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्रमुमुक्तमेनम् ॥ १ ॥

यदि क्षितायुर्यदिवा परेतो यदि मृत्योरंतिकं नीत एव ॥
तमाहरामि निर्ऋते रुपस्थात् अस्पार्षमेनं शतशारदाय ॥ २ ॥

सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥
शतं यथेमं शरदोनयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ३ ॥

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमंताञ्छतमुवसन्तान् ॥
शतमिन्द्राग्नी साविता वृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ॥ ४ ॥

ऋ० । १० । १६१ ॥

" हे व्याधिग्रस्त मनुष्य ! तुमको ज्ञात तथा अज्ञात व्याधी से हवन के द्वारा अच्छा करता हूं, यदि बहुत दिनों का रोग हो तो इन्द्र व अग्नि इनके द्वारा अच्छा हो सकता है, यदि बीमार मरणोन्मुख हुआ होगा तो भी पुनः आरोग्य संपन्न हो सकता है, शरीर के अन्दर जो कुछ दुरित गया हो वह शत गुणित हवन से दूर हो सकता है, इन्द्र (विद्युत्), अग्नि, सूर्य तथा बृहस्पति (ज्ञानी) इनके सहाय्य से आसन्न मरण रोगी भी पुनः शतायुषी होसकता है

यह चारों मंत्र अत्यन्त उपयुक्त हैं, इसमें " दुरित " ऐसा एक शब्द है, दुरित सब रोगों का मूल है ऐसा माना जाता है, इसकी सत्यता देखने के लिये इस शब्द का अर्थ देखना चाहियेः—

दुर=विषम, दुष्ट,

इत=गत, अन्दर प्रविष्ट,

शरीर के अन्दर जो विषम, दोषयुक्त, पदार्थ गया हो वह दुरित समझा जाता है, शरीर के अन्दर समता उत्पन्न करने वाले पदार्थ हितकारक तथा विषमता उत्पन्न करने वाले पदार्थ अहित-कारक अर्थात् दुरित रूप होते हैं, शरीर पोषक पदार्थ हितकारक तथा रोगोत्पादक पदार्थ सब दुरित रूप समझे जाते हैं, यूरप में डा० कुन्हे ने सिद्ध करके बताया है कि शरीर के अन्दर विषम प्रकृति Foreign Matter आने से नाना व्याधियां होता है तथा उसके चले जाने से रोग की निवृत्ति होते हैं, "दुरित" शब्द भी यही आशय बताता है, रोगजंतुओं से शरीर का संवर्धन नहीं होता है इसलिये इनको दुरित कहते हैं, इनको शरीर से दूर करने के

उपाय उक्त मंत्र में कहे हैं, हवन, अग्नि, विद्युत, सूर्य इनके प्रभाव से रोगबीजों का नाश होता है यह उक्त मंत्रों का आशय है, अग्नि से रोगजंतु नष्ट होते हैं यह पूर्व बताया है, अब सूर्य के विषय में देखिये :—

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन्हन्तु निम्रोचन्हन्तु रश्मिभिः ।
ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥ १ ॥ विश्वरूपं चतुरक्षं
क्रिमिम् सारंग मर्जुनम् । शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि
यच्छिरः ॥ २ ॥ भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः ॥ ३ ॥
शृणामि शृंगे याभ्यां वितुदायसि
भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः ॥ ३ ॥

अथर्व० २ । ३२ । १ ।

" उदय पाने वाला तथा अस्त होने वाला सूर्य अपने किरणों से क्रिमियों का नाश करे, जो क्रिमी भूमि तथा आकाश में रहते हैं, यह क्रिमि अनेक रूपी के होते हैं, कई चार नेत्र वाले, कई श्वेत, कई रक्त ऐसे अनेक प्रकार के होते हैं, इन सबका मैं नाश करता हूं, इनको दो सींग होते हैं, जिन से वे प्राणियों को काटते हैं, तथा इनके पास एक विषकी थैली भी होती है" ॥

इस मंत्र में सूर्य किरणों के द्वारा क्रिमियों का नाश होता है ऐसा कहा है, जैसा अग्नि राक्षस-हंता है उसी प्रकार सूर्य भी है, सूर्य का वर्णन वेद में इन्द्र शब्द से तथा सूर्य शब्द से आया है, सब स्थान में उसको राक्षस हन्ता ही कहा है, विद्युत्का वर्णन भी इन्द्र के सूक्तों में आया है, यह भी राक्षस हन्त्री है, पृथिवी के

ऊपर अग्नि, अंतरिक्ष में विद्युत् तथा द्युस्थान में सूर्य ऐसे तीन देव राक्षसों का नाश कर रहे हैं, यह तीन पदार्थ रोग जंतुओं के नाशक हैं ऐसा आधुनिक योरोपीय विद्वान् भी मान रहे हैं, इसलिये इस विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं, अस्तु ॥

इस निबंध में रोग जंतुओं के विषय में वेद में जो अनेक उल्लेख आये हैं, उनका सारांश रूप से दिग्दर्शन किया है, (१) वेद में रोग जन्तुओं की कल्पना किस प्रकार है, (२) उनके नाम कौन से हैं ? (३) उनकी जातियां कितनी हैं, (४) उनकी उत्पत्ति कैसी होती है, (५) तथा उनका नाश किस प्रकार होता है, इत्यादि विषयों पर विस्तारशः लेख लिखने से निबंध का विस्तार बहुत ही बढ़े गा, इस लिये इस निबंध में सब विषयों का दिग्दर्शन सारांश रूप से किया है ॥

वस्तुतः ऐसे निबंध विद्वान वैद्यों को लिखने चाहिये, जिस से निबंध में अशुद्धियां कम हो सकती हैं, यदि इस निबंध से वैद्यों की इस विषय की और प्रवृत्ति होगई और उन्हों ने वेदाध्ययन कर के वेदांतर्गत, वेद विद्या लोकों के सन्मुख लाने का कार्य प्रारंभ किया तो मैं अपने को कृत कर्म समझूं गा, वह दिन शीघ्र ही आजाय ऐसी इच्छा करता हुआ मैं इस निबंध को समाप्त करता हूं ॥

ओम् शांति ! शांति !! शांति !!!